Aayushi International Interdisciplinary Research Journal (AIIRJ)
UGC Approved Sr.No.64259
Vol - V Issue-IV APRIL 2018 ISSN 2349-638x Impact Factor 4.574

दलित साहित्य के समक्ष चुनौतियाँ

दीपा भण्डारी
(शोधार्थी) हिंदीविभाग-
पंजाब विश्विद्यालयचंडीगढ़ ,-160014

सारांश :

21वीं सदी में दलित साहित्य की विकास यात्रा को एक नयी ऊँचाई मिल रही है, इसके ऐतिहासिक विकासक्रम पर अगर हम ध्यान केन्द्रित करें तो पता चलेगा कि इसकी निरंतरता में बहुत कुछ नया जुडा है। इसका दायरा कई मायनों में विस्तृत भी हुआ है साथ ही साथ दलित साहित्य के समक्ष अनेक सवाल खड़े हो गये हैं जैसे- अस्मिता का प्रश्न, दोहरी संस्कृति, सौंदर्यशास्त्र का प्रश्न, एकरसता का साहित्य, समीक्षा के संकट, स्वानुभूति और सहानुभूति, पाठकीय समस्या, मीडिया के हाशिए पर दलित साहित्य आदि। दलित साहित्य का महत्वपूर्ण सवाल दलित साहित्य कौन लिख सकता है दलित लेखकों का मानना है कि दलित साहित्य के प्रमाणिक लेखन के लिए यह आवश्यक है कि भोगे हुए अनुभव को ही अभिव्यक्ति दी जाए क्योंकि वे अपने भोगे हुए यथार्थ के स्वयं साक्षी हैं। दलित विमर्श के सम्मुख दलित साहित्य के आलोचनात्मक प्रतिमानों की स्थापना हेतु मानदंडों को निर्धारित कर दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र, समाजशास्त्र और भाषाशास्त्र को निर्मित की विशद चुनौती भी है। दलित साहित्य पर सवाल उठाये जा रहे हैं कि एक ही विषय अधिक दिनों तक नहीं चल सकता। दलित बोध, छुआछूत, जातिजनित शोषण, पीड़ा ओर उत्पीड़न आक्रोश आदि एक नीरस विषय है, जिस पर न जाने कब से विचार होता रहा है। यह साहित्य मोनोटोनस हो जाएगा। दलित साहित्य के सम्मुख एक प्रश्न यह भी है कि यह साहित्य केवल दलित पाठकों के लिए ही है। किन्तु दलित साहित्य आज कई भाषाओं में अनुदित हो रहा है और धीरे धीरे लोग दलित साहित्य के प्रति आकर्षित हो रहे हैं। दलित साहित्य को तमाम प्रतिबद्धताओं के बीच उदार और सहिष्णु बनना पडेगा तभी साहित्य की सीमा का विस्तार हो सकता है। साहित्य का प्रथम और अंतिम उद्देश्य मानव जाति का उद्धार और निर्माण ही है। अत: साहित्य को समय और समाज के अनुरूप ऐसा साहित्य सृजन करना होगा, जिसे युवा पीढ़ी और आम जनता भी चाव से पढ़ें।

साहित्य के किसी भी नई धारा को सहज में मान्यता नहीं मिलती। उसे समय की कसौटी पर परखकर देखा जाता है और यदि वह प्रासंगिकता के नएसमीक्षकों और पाठकों द्वारा स्वीकारी ,तभी वह साहित्यकारों ,नए संदर्भ उद्घाटित करने में समर्थ होती है । जाती है दलित साहित्य के उदय के साथ ही साहित्य के सामने अनेक सवाल खडे हो गये हैं।

दलित साहित्य को स्वीकृति तो मिल चुकी हैप्रगतिवादी साहित्य की तरह इसे भी एक वर्गीय साहित्य -किंतु मार्क्सवादी ; । का दर्जा प्राप्त है दलित साहित्य की कुछ रचनाओं को पाठ्यक्रम में शामिल कर लिया गया है। इसे साहित्य में दलितों का आरक्षण कहा जा सकता है। जिस प्रकार दलितउसी प्रकार ,चेतना एक ओर उच्च जातीय शोषण और अपमान का शिकार बनी- । वह स्वयं अपने अंतर्विरोधों की कीमत चूका रही है दलितसाहित्य से -दूसरी ओर दलित ,साहित्य एक ओर दलितेतर समाज की- उठे प्रश्नों की और तीसरे इन दोनों चुनौतियों का सामना कर अपनी पहचान बना सकने की है। हिन्दीसाहित्य का जो -पट्टी में दलित-

। वह अभी भी मुख्यधारा का साहित्य नहीं बन पाया है ,विकास हुआ अनेक समीक्षकों की दृष्टि में वह अभी अविकसित और अपरिपक्व है। वस्तुतः दलितसाहित्य को इन चुनौतियों का सा-मना पूरे आत्मविश्वास से करना पड़ेगा।

दलित शब्द का अर्थ एवं परिभाषा :

दलित का अर्थ है । कुचलना आदि ,हिस्से करना ,तोड़ना--

'दलित शब्द को सपष्ट करते हुए '**कँवल भारती** कहते हैं ,"दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागु किया गया है। जिसे कठोर और गन्दे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और

स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर सवर्णों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागु कीवही और , जिन्हें अनुसूचि ,और इसके अंतर्गत वही जातियाँ आती हैं ,वही दलित हैत जातियाँ कहा जाता है[1]" ।

'दलित के संदर्भ में मराठी के प्रसिद्ध दलित साहित्यकार '**शरणकुमार लिंबाले** सपष्ट करते हैं ,"दलित केवलहरिजन और नवबौद्ध नहीं गाँव की सीमा के बाहर रहने वाली सभी अछूत जातियाँकष्टकारी ,श्रमिक ,मजदूर ,खेत ,भूमिहीन ,आदिवासी , जनता और यायावर जातियाँ सभी की सभी 'दलित। शब्द की परिभाषा में आती हैं ' दलित शब्द की परिभाषा में केवल अछूत जाति का उल्लेख करने से नहीं चलेगा। इसमें आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों का भी समावेश करना होगा[2]" ।

दलित : साहित्य का अर्थ-

दलित जो मानवीय ,साहित्य-साहित्य जन-मूल्यों की भूमिका पर सामंती मानसिकता के विरुद्ध आक्रोशजनित संघर्ष है। इसी संघर्ष और विद्रोह से उपजा है दलित। साहित्य- दलितों का दुःखपतन और उपहास के साथ ही :अध ,गुलामी ,परेशानी , दरिद्रता का कलात्मक शैली से चित्रण करने वाला साहित्य ही दलित साहित्य है ।

डॉरज .त रानी मीनू दलित साहित्य को इस प्रकार सपष्ट करती हैं ,"दलित साहित्य का लक्ष्य दलितों के पशु तुल्य नारकीय जीवन के प्रति पूर्णत। विद्रोह व्यक्त करना है : दलित साहित्य का लक्ष्य दलित समाज को स्वाभिमानस्वालम्बन एवं अस्मिता के , लिए कृतसंकल्प होकर जूझने का संदेश है समग्र रूप से कहा जा सकता है कि दलित समाज में आत्माभिव्यक्ति के साथ चेतना और साहस उत्पन्न करना ही दलित[3]" । साहित्य का लक्ष्य है और यही उसका सन्देश भी-

दलित चिंतक **कँवल भारती** की धारणा है कि ,"दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है। अपने जीवनदलित साहित्य उनकी उसी ,संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है- अभिव्यक्ति का साहित्य है यह कला के लिए कला नहीं[4]" । बल्कि जीवन का और जीवन की जिजीविषा का साहित्य है ,

वर्तमान में दलित साहित्य के समक्ष अनेक गंभीर चुनौतियाँ खडी हैं। जिनका वर्णन इस प्रकार है –

दलित अस्मिता :

भारत की परम्परागत वर्णचाहे वह सभी ,व्यवस्था के कारण दलित असम्मान का पात्र बना रहता है- कार्य में कुशल हो। किसी भी चुनौती का सामना करते समय जाति सदैव दलितों को परस्पर बाँटने और कमजोर करने का एक हथियार बनती है।

दलितों के लिए अपने संघर्ष के आरंभिक काल से ही मुख्य समस्या सामाजिक स्वतंत्रता की रही है। सामाजिक गुलामी से मुक्ति ही अछूतों के लिए आजादी का अर्थ था। उनके लिए सामाजिक दासता ही उनके आर्थिक विकास में बाधा थी। हजारों सालों से चली आ रही सामाजिक और आर्थिक उत्पीडन आज तक बरकरार है। भले ही उसका स्वरूप बदल गया हो , आज दलित साहित्य । उसको नहीं उठाता है ,आर्थिक समस्या जो दलितों की आधारभूत समस्या है ,जबकि इससे अलग दलित संस्कृति और दलित धर्म की बात करता है। दौलत के प्रति उसकी कोई चिंता नहीं है-किन्तु जीवन के बुनियादी आधार धन , दलित साहित्य ने आर्थिक समानता के प्रश्न नहीं उठाये हैं। दूसरे दलित जब समानता की बात करते हैंतो उसमें सभी दृष्टियों से समान होने , की शर्त शामिल होती है। दलितों के साथ पहली समस्या पहचान की है। आर्थिक पक्ष एक बड़ा सवाल हैजिसमें भूमिसुधार से लेकर , । उद्योग धन्धे और सम्पतियों में हिस्सेदारी तक शामिल है

क्रान्ति मोहन कहते हैं कि दलित समस्या सामाजिक एवं धार्मिक नहीं वरन आर्थिक है। उनका कहना है ,"अछूत प्रथा भूमि पर व्यक्तिगत स्वामित्व के सम्बन्ध स्थापित होने के बाद ही अस्तित्व में आयी होगी। सामाजिक ऊँचनीच का भाव अभिन्न - [5]" । नीच के भाव के मूल में भूमि का स्वामित्व और भूमिहीनता है-रूप से ऊँच

दलित वर्ग को अपने मान सम्मान को प्राप्त करने के लिए-सचेत होना पड़ेगा। इस संदर्भ में **देवेन्द्र कुमार** ने लिखा है , "अपनी वास्तविक स्थिति का बोध होने पर ही दलित वर्ग समाजसत्ता और संस्कृति के खोखले आदर्शों को समझने तथा उनके - । विरुद्ध खडा होने में समर्थ हो सकता है यह बोध ही उसे इस बात की प्रेरणा देगा की वह उस षड्यंत्र की पडताल कर सकेजिसके , प्रताड़ित और वंचित किया ,लांछित ,मजदूर वर्ग को अंत्यज और शूद्र कहकर उपेक्षित ,तहत समाज के मेहनतकश किसान [6]" । गया

दलित समाज को सभी क्षेत्रों में। शिक्षा या न्यायालय हो बराबरी का हिस्सा मिलना चाहिए ,चाहे वह राजनीतिक , इसके लिए दलितों को शिक्षा की तरफ ध्यान देना होगा । तभी दलित वर्ग को सामाजिक और आर्थिक समानता मिल सकेगी ,

दोहरी संस्कृति :

दलित साहित्य के समक्ष मुख्य चुनौती दोहरी संस्कृति के वास्तविक रूपों को उजागर करने की भी रही हैचूँकि अभिजात , संस्कृति द्वारा प्राचीन संस्कृति के झूठे गौरव को जनसंस्कृति पर मंडित कर दो मूल्यों वाली संस्कृति को भारतीय संस्कृति के रूप में स्थापित करने का प्रयास होता रहा है। दलित साहित्य सवर्णवादी प्रतिमानों ,मुहावरों को नकार कर नये प्रतिमानों ,मिथकों-मिथकों और मुहावरों को गढने के प्रति कटिबद्ध रहा है।

जबकि अभिजात वर्गीय साहित्य यथार्थ से असम्बद्धदूसरों की ,अपने में मस्त ,संसार से निर्लिप्त और मुक्त ,आनंद में मत्त , दुःख की चर्चा का साहित्य रहा है -पीड़ाओं और सुख ,कुंठाओं ,असुविधा पर सुविधा भोगने वाली जातियों द्वारा एश्वर्य हेतु निर्मित जिसमें आम आदमी के कार्यों और उनकी पीड़ाओं की चिंता कभी नहीं रही बल्कि साहित्य में उनकी चर्चा वर्जित रहीइसी कुंठित , मानसिकता से परिपक्व चिंतकों द्वारा दलित साहित्यकारों की बराबरी की लडाई को मानवता के नाम पर मानव भंजक और

,जातिवादी करार देने का प्रयत्न हो रहा है अतदलित साहित्य सच को सच सिद्ध करने और बदलाव लाने के लिए --कह सकते हैं :

[7] । रचित साहित्य है

आधुनिक चिंतन के आधार पर दलित साहित्य जाति व्यवस्था से ईश्वरीय विधान तक का विरोध करते हुए सामाजिक मनोवैज्ञानिक श्रेष्ठतानिम्नता पर आधारित हिन्दू पदक्रम के निम्नस्तरीय पहलुओं को स्वीकार करने से इंकार करता हैदलितों :अत , के लिए सम्मानजनक स्थिति प्राप्त करने और मार्ग के बाधक सम्बन्धों और विश्वासों को समूल नष्ट करने की चुनौती दलित लेखन के । सम्मुख रही हैइतना ही नहीं दलित साहित्य के समक्ष भारतीय वर्णव्यवस्था द्वारा परिचालित- मानसिकताव्यवस्था को ,समाज , । बदलने की भी चुनौती रही है

सौंदर्यशास्त्र का प्रश्न :

दलित साहित्य यद्यपि परिमाण की दृष्टी से पर्याप्त मात्रा में लिखा जा रहा हैकिन्तु अभी उसका अपना सौन्दर्यशास्त्र नहीं , । है इस विषय में दलित चिंतकों के दो दृष्टिकोण सामने आते हैं । एक तो यह कि दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र तो विकसित हो गया है । किन्तु हम अभी उसे पारंपरिक सौन्दर्यशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में देखने के अभ्यस्त नहीं हैं , दूसरा वर्ग मानता है दलित साहित्य किसी सौन्दर्यशास्त्र या साहित्यिक प्रतिमानों का मोहताज नहीं है । दलित साहित्यकारों ने अपने दृष्टिकोण के अनुसार दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र को आकर देने की कोशिश की है । दलित साहित्य चिंतक पहला प्रहार पारंपरिक सौन्दर्यशास्त्र परंपरा के आनंद पक्ष पर करते हैं ,"यदि दलितेतर साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र आनंद पर आधारित है तो दलितसाहित्य में व्यक्त हुई वेदना और विद्रोह - । न कि आनंदित ,पढ़कर पाठक बेचैन या कुपित होगा दलित । साहित्य पाठक को बेचैन या कुपित करने वाला साहित्य है- इसलिए सौन्दर्यचेतना का आपसी तालमेल-साहित्य की दलित-वृत्ति और दलित-विचार करते समय पारंपरिक साहित्य की रसिक- नहीं बैठ सकता[8]" ।

दलित साहित्य की भाषा के संदर्भ में कहा जाता है कि यह गँवार । असभ्य भाषा है- यह भाषा व्याकरण के नियम को न मानने वाली भाषा है । **शरणकुमार लिंबाले** दलित ,साहित्य की भाषा पर टिप्पणी करते हुए कहते हैं-"जब मेरी माँबहन पर - कपट की -जब मैं लिखता हूँ तो मेरी रचनाएँ मेरे साथ हुए छल ? उसे क्या कलात्मक ढंग से अभिव्यक्त करूँ ,अत्याचार होता है । अभिव्यक्ति होती हैं अपने उपर हुए छलकपट को कलात्मक शैली में पेश करूँ ? जिसका घर जल रहा हैउसका संताप सुर में , [9]" । जो शास्त्रीय संगीत है वह आक्रोश नहीं है ,आक्रोश शास्त्रीय संगीत नहीं है ? होना चाहिए

भले ही इस प्रकार की भाषा से पाठक के मन में उद्वेलन का दावा किया जाएकिन्तु ऐसी भाषा से न दलित साहित्य को , ताजगी मिलती है और न इससे भाषा की जडता प्रभावित होती है । अभी दलित,चेतना को और अधिक व्यापक तथा प्रौढ़ होना है- । गलौज भरी भाषा को किसी भी दृष्टि से दलित साहित्य का प्रतिमान नहीं माना जा सकता-किन्तु ऐसी गाली

एकरसता का साहित्य :

दलित साहित्य पर एकसुरतावही का वही एक ही विषय होने क ,ा आक्षेप प्राय । लगाया जाता है : दलित बोध , । पीड़ा और उत्पीड़न आक्रोश आदि विषय जिस पर लंबे समय से विचार होता रहा है ,जातिगत शोषण ,छुआछूत इनमें से बहुत से

अनुभव अब पुराने पड़ चुके हैं। छुआछूत बहुत हद तक मिट चुकी है , ऐसे बुरे अनुभव जिन्हें लोग काफी हद तक भूल चूके हैंउसे , । फिर से ताजा करना अपने आप में एक अप्रिय विषय है किन्तु **शरणकुमार लिंबाले** कहते हैं ,"समान वैचारिक भूमिका के कारण इस साहित्य का स्वरूप एकसुरी है। इसके अतिरिक्त दलित साहित्य में प्रस्तुत अनुभव वही के वही हैं। अस्पृश्यों की अस्पृश्यता के कारण होने वाले अनुभव एक जैसे हैं। गाँव का नाम भले अलग हो। पर दलितों के जुल्म का स्वरूप समान है , सामाजिक बहिष्कारसार्वजनिक स्थान में प्रवेश के लिए ,जाति छिपाना ,किराए पर घर न मिलना ,अलग बस्ती ,अलग श्मशान ,अलग पनघट , मृत जानवर क ,दलित स्त्रियों पर होने वाले अन्याय ,मनाही ो खींचनानाई द्वारा बाल न काटना आदि अनुभव एक सरीखे ,फाड़ना , [10]" । हैं

दलित आलोचक **डॉसिंह .एन** . ने इशारा किया है ,"चूँकि पूरे दलित समाज के उत्पीड़न और शोषण के अनुभव एक ही जैसे हैंदूसरे एक बार अपना अनुभव लिख लेने के बाद लेखक के पास लिखने को बाकी कुछ ,इसलिए एक तो वे दोहराये जाएँगे , । नहीं बचेगा वह चुक जाएगा। फिर वह पुनरावृत्ति नहीं करेंगेजो उन्हें मो ,नोटोनस बना देगा ?"[11]

किन्तु रमणिका गुप्ता ने इसे सिरे से खारिज कर दिया है। वह कहती हैं ,"वैसे भी साहित्य की हर प्रवृत्ति एक समय के बाद मोनोटोनस होती रही है और होती रहेगी। दलित साहित्य के संबंध में ही यह खास बात नहीं है। हिन्दी पट्टी में तो अभी इसका शुरुआती दौर ही है[12]" । इसे लेकर विवाद नहीं उठाना चाहिए ,

दलित साहित्य की समीक्षा के संकट :

दलित साहित्य को अभी ऐसे प्रतिमान गढ़ने हैं। जिन पर उसकी वस्तुनिष्ठ एवं गंभीर समीक्षा की जा सके ; समस्या यह है कि दलित साहित्यकार मूल्यांकन के लिए उसके नकारात्मक पक्षों की साहित्यिक व्याख्या की अपेक्षा करते हैं। **शरणकुमार लिंबाले** की दृष्टि में ,"दलित समीक्षक दलित। साहित्य की समीक्षा समाजशास्त्रीय दृष्टि से करते हैं- दलितशोषण और ,साहित्य जहाँ विद्रोह- ' वहीं उसका नकार ,विषमता के विरुद्ध हैमुझ पर जो लादा गया है वह फेंक देने के लिए ,हैं- को दर्शाता है और इसी स्वरूप की समीक्षा भी होती दिखती है। पर साहित्य में 'विद्रोह और नकारविद्रोह ,लेकिन वेदना ,मीमांसा की जाती है की सामाजिक कारण ' [13]" । और नकार के साहित्यिक विशेषताओं की ओर ध्यान न देकर सामाजिक व्यवस्था पर ही अधिक विचार करती हुई दिखती है

दलित साहित्य में जो सामाजिक सरोकार हैंउनका साहित्यिक मूल्यांकन पारंपरिक साहित्यिक प्रतिमानों के आधार पर , । करने के लिए न दलित साहित्यकार तैयार हैं न दलित चिंतक समीक्षा साहित्य को समझने की एक वस्तुगत प्रक्रिया है। दलित साहित्य के चिंतक मानते हैं ,"मध्यवर्गीय समीक्षक दलित। ऐसी अपेक्षा करना ही गलत है ,साहित्य की गहराई से समीक्षा करेंगे- उनके लिए दलित लेखकों के अनुभव की जातअनुभव का संदर्भ और अनुभव की ,अनुभव की भाषा ,अनुभव की तीव्रता , इन सबका पूर्ण आकलन हुए ,अभिव्यक्ति बिना दलित[14] । साहित्य की गहराई से समीक्षा करना संभव नहीं है-

दलित साहित्यकारों की अनुभूतिकिन्तु ,उसे अभिव्यकत करने वाली भाषा आदि सभी पक्षों का आकलन आवश्यक है , । यह आकलन एक पूरे वर्ग को समीक्षा से अलग कर संभव नहीं दलित साहित्य की समीक्षा और उसका स्वरूप एवं दिशा

निर्धारित करना एक बडी चुनौती है। जैसेवैसे इस -वैसे ,उसमें गंभीरता का समावेश होगा ,जैसे दलित साहित्य का विकास होगा- । साहित्य की समीक्षा के नए प्रतिमान गढ़े जाएँगे

दलित साहित्य कौन लिख सकता है :

दलित साहित्य के प्रश्न को सहानुभूति अथवा स्वानुभूति का विभाजन करके भी उठाया जाता है। दलित लेखक यह मानते हैं कि दलित साहित्य के प्रामाणिक लेखन के लिए यह आवश्यक है कि भोगे हुए अनुभव को ही अभिव्यक्ति दी जाए। उनका मानना है कि दलित लेखन केवल दलित ही कर सकते हैं । क्यों कि वे अपने भोगे हुए यथार्थ के स्वयं साक्षी हैं ;

राजकुमार सैनी गैर ,दलित लेखकों द्वारा लिखा गया साहित्य को सपष्ट करते हुए कहते हैं-"मेरा अभिमत है कि दलित चेतना का साहित्य लिखने के लिए दलित होना जरूरी नहीं है। साहित्य का संबंध संवेदना से है। दलित जाति का व्यक्ति भी व्यवस्था में बिकाऊ माल की तरह संवेदशून्य हो सकता है। दूसरी और निराला जैसे महाकवि भी हुए हैंजिन्होंने हिन्दी कविता में , ' पहली बारदलित[15]" । शब्द का प्रयोग किया '

इस प्रकार कुछ लोग दलित लेखन को ही दलित साहित्य मानते हैंतो कुछ लोगों के विचार में दलित केंद्रित अन्य लेखन , भले ही वह ,भी दलित साहित्य हैगैर । दलितों द्वारा लिखे गये हों-**अजय नावरिया** सवाल उठाते हैं कि ,"यदि एक जन्मना दलित ब्राह्मणवादी सोच और विचारधारा के अनुरूप लेखन करता है और कोई गैरव्यवस्था के -दलित ब्राह्मणवादी संस्कार और वर्ण- किस ? तो दलित साहित्यकार किसे माना जाना चाहिए ,विरुद्ध लिखता हैके साहित्य को 'दलित साहित्यकी परिधि में शुमार होना ' ? चाहिए"[16]

दलित साहित्यकार तो प्रेमचन्द द्वारा रचित दलित रचनाओं को भी सहानुभूति का साहित्य कह कर खारिज कर देते हैं। प्रेमचंद के विषय में **हरिनारायण ठाकुर** कहते हैं ,"प्रेमचन्द निश्चय ही जन्मना गैरकिन्तु वे हिन्दी के एकमात्र ऐसे ,दलित लेखक हैं- प्रेमचन्द ने अपने पूरे _ _ । स्त्रीवाद और अम्बेडकरवाद के भी ,उतने ही मार्क्सवाद ,जो गांधीवाद के जितने करीब हैं ,लेखक हैं जीवन का गीत बनाकर उसे सामाज-साहित्य को भारतीय जनिक सरोकारों से सीधे जोड दिया। उन्होंने भारत की आत्मा किसान। दर्द को अपने साहित्य का विषय बनाया-मजदूरों के दुःख- कथा [17]" । साहित्य में पहली बार यथार्थ को स्वीकार्य बनाया-

दलित साहित्य कोई भी लिखेचेतना का संवाहक है तो उसे मुक्त हृदय से स्वीकार करन-यदि वह दलित ,ा चाहिए ।

पाठकीय सहभागिता की समस्या :

दलित लेखक का प्रश्न और गैरदलित लेखकों को विभाजन से जोड दिया गया है तथा यह विभाजन साहित्य की प्रगति के- । लिए अहितकर है दलित और गैरदलित लेखकों का विभाजन करके यह अर्थ निकलता है कि दलित साहित्य केवल दलित - पाठकों के लिए ही है। यदि गैर । सीधे जुड़ना नहीं चाहते-दलित पाठक इस साहित्य को पढ़ते हैं तो उस पठनीयता से वे सीधे-

जब दलित लेखक दलित साहित्य की रचना करते हैं तो उनके सामने समूचे दलित समाज का बिंब होता है। वे अपने पाठकों की आवश्यकतानुसार नहीं लिखतेबल्कि अपने समाज को प्रेर ,ित और उद्वेलित करने के लिए लिखते हैं। इस संदर्भ में

शरणकुमार लिंबाले कहते हैं ,"दलित लेखक अपने पाठकों की अपेक्षा अपने समाज का प्रश्न महत्त्वपूर्ण मानता है। वह अपनी अनुभूति। अपने साहित्य में व्यक्त करता है , वह नगर पाठकों को ध्यान में रखकर अपने साहित्य का सृजन नहीं करता। उसकी कोशिश तो रसिकों को ही अपने अनुभव के स्तर पर ले जाने की होती हैजिसके कारण रसिकगामी सौंदर्यशास्त्र यहाँ कुछ कम , [18]" । पड़ता है

इसमें कोई संदेह नहीं कि दलित लेखक के लिए अपने समाज का प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण हैक्यों कि यह साहित्य आन्दोलन , की कोख से उत्पन्न हुआ हैयदि :अत ,इसलिए इसका लक्ष्य दलितों में अपने अधिकारों के लिए आन्दोलन का ज्वार उठाना है , तो निश्चय ही दलित साहित्य का स्तर गिरेगा और ,आंदोलनों के लिए प्रेरित करना ही दलित साहित्य का उद्देश्य मान लिया जाएगा जिस अनुपात में दलित साहित्य आंदोलनों की प्रकृति के अनुरूप लिखा जाएगा। वैसे उसकी पठनीयता भी घटेगी-वैसे , सच तो यह है कि ,"दलित लेखक इस दुविधा में फँसा है कि उसे सोलहवीं सदी के समाजव्यवस्था से लड़ना है कि इक्कीसवीं सदी के - । अभी तक तो हमारे पाठक सीमित थे ? चैलेंजों से भिड़ना है एक भाषाएक प ,्रान्त के थेलेकिन अब हमारा साहित्य दुनिया , । की कई भाषाओं में अनूदित हो रहा है धीरे। धीरे लोग दलित साहित्य के प्रति आकर्षित हो रहे हैं- इस ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है कि दलित। साहित्य पूरे भारत का साहित्य है- दलित लेखक को अपनी जाति से बाहर निकलकर अन्य जातियों[19]" । उपजातियों की पीड़ा व्यक्त करनी होगी/

दलित साहित्यकारों को अपनी अस्मिता बचाए रखने के लिए दलित साहित्य को व्यापक और मानवीय परिप्रेक्ष्य देना ही होगा।

मीडिया के हाशिए पर दलित : साहित्य-

वर्तमान समय ग्लोबल दुनिया का दौर है। यह वह समय हैआद ,जब परंपरा ,र्शसामाजिक सरोकार इन ,सत्ता ,अस्मिता , । सबसे बड़ा कद बाजार और पूंजीवादी शक्तियों का है जो बिकता है। वही हाशिए पर है ,जो नहीं बिकता ,वही प्रासंगिक है , मीडिया ही वही शक्ति है। जो बाजार की सत्ता को अजेय बनाए रखता है , जब हम मीडिया को दलित समुदाय के साथ रखकर देखते हैं तो एक निराशापूर्ण परिदृश्य सामने आता है। वहाँ दलित वर्ग पूरी तरह से उपेक्षित है। टेलीविजनजो भारतीय परिवारों में , घट .पी.आर.उसके नियंताओं की चिंता यह है कि दलित समुदाय की वास्तविकता दिखाने से टी ,सर्वाधिक लोकप्रिय माध्यम है वे दलित समुदाय :अत ,जाएगी की वास्तविकताओं से बचकर निकल जाते हैं ।

। न कोई कार्यक्रम ,उनमें दलितों के प्रति न कोई सहानुभूति है ,मध्यवर्ग घरों में जिन कार्यक्रमों को देखते हैं" सो तय है कि उनकी कोई टी। नहीं बनेगी .पी.आर. अधिक अधिक एक निष्पक्ष चेहरे और छवि के लिए एक योजना के तहत वह-से-दलितों से संबंधित कुछ ऐसा फुटेज दिखाएगा। बढ़ा सके .पी.आर.जो उसके व्यावसायिक हितों में रोड़े के बीच उनकी टी , वस्तुतः टी। न कि दलितों का यथार्थ ,ही उनके लिए विज्ञापन राशि दिलाता है .पी.आर. सो विज्ञापन राशि के इस संजाल को समझने के बाद यह सच मान लेना चाहिए कि जब तक दलितों का यथार्थ एक उत्पाद की जगह नहीं घेरतामीडिया को उसमें न कोई , [20]" । न उनके प्रोग्राम कंटेंट की जरूरत ,दिलचस्पी है

यह बात सही भी है कि मीडिया जान। बूझकर दलित साहित्य को हाशिये पर रखता है- बहुत संभव है कि इसका कारण छिपा हुआ जातीय अंहकार भी होकिन्तु द ,लित साहित्यकारों को भी मीडिया से जुड़ने के लिए आत्ममंथन करना होगा। उनको अपनी चेतना के बल पर बाजार और मीडिया को बदलने की कोशिश तो करनी ही चाहिएसाथ उन्हें अपने -किन्तु इसके साथ , । साहित्य के बल पर स्वयं को बाजार एवं मीडिया के अनुकूल भी बनाना होगा

आधुनिक चिन्तन के आधार पर दलित साहित्य जातिव्यवस्था से ईश्वरीय विधान तक का विरोध करते हुए सामाजिक मनोवैज्ञानिक श्रेष्ठतादलितों के :अत ,निम्नता पर आधारित हिन्दू पदक्रम के निम्नस्तरीय पहलुओं को स्वीकारने से इंकार करता है- लिए सम्मानजनक स्थिति प्राप्त करने और उसके मार्ग के बाधक संबन्धों और विश्वासों को समूल नष्ट करने की चुनौती दलित लेखन के सम्मुख रही है। इतना ही नही दलित साहित्य के सम्मुख भारतीय वर्ण व्यवसथा द्वारा परिचालित मानसिकतासमाज व्यवस्था , और मूल्यों को बदलने का नया सौन्दर्यशास्त्र और नये मानदण्ड गढने तथा अस्मिताओंको प्रतिष्ठित करने का संकल्प लेने की चुनौती के साथ। उपभोक्तावाद के सामना करने की भी दोहरी चुनौती रही है ,साथ विकेंद्रीकरण और वैश्वीकरण के षड्यंत्र- इसके अतिरिक्त दलित विमर्श के समक्ष दलित साहित्य के पहचान की समस्या और दलित चेतना के विकास की समस्यादलित , साहित्य और आन्दोलन के उद्देश्यों की प्राप्ति की समस्या प्रमुख रही है जिसकी दिशा में दलित विमर्श को सक्रिय होने की आवश्यकता है। तभी दलित विमर्शकार वैश्विक सन्दर्भ में होने वाले परिवर्तनों के अनुकूल दलित समाज के लिए जीवन को स्थायित्व प्रदान करने में सफल हो पायेगा चूँकि वैश्विक और उपभोक्तावादी विषमताओं से सही शिक्षा और प्रशिक्षण तथा मार्गदर्शन के अभाव में दलित नई तकनीकमशीनीकरण और बेरोजगारी का शिकार होने लगेगा साथ ही विज्ञापनों की होड से उत्पन्न ललक , द्वारा मध्ययुगीन सामन्ती समृद्धि के प्रति मोह की उत्पत्ति और अंधी आधुनिकता की होड द्वारा आधुनिक प्रसाधनों एवं उत्पादों को जीवन का लक्ष्य बनाने की मुहिम द्वारा दलितों को जड़ों से काटने के लिए होने वाले प्रयासों के प्रति भी सावधान होने की आवश्यकता परिलक्षित होती है। अंत में कहा जा सकता है कि बाबा साहेब द्वारा दर्शाए गये मार्ग पर चलते हुए शिक्षित बनने , । संगठित होने और संघर्ष करने में ही दलित साहित्य और आन्दोलन की सफलता और शक्ति अंतर्निहित है बाबा साहेब न केवल दलितों को। बल्कि दलित साहित्य को भी समूचे विश्व के दलितों और शोषितों से जोड़ना चाहते थे , इस दृष्टी से दलित साहित्य को न केवल अपनी सर्जनात्मक क्षमता को वैश्विक स्तर पर सिद्ध करना होगाबल्कि समूचे दलित और शोषित समाज को दूसरे दलित , । एवं शोषित नवजागरण के लिए भी प्रेरित करना होगा

संदर्भ सूची :

1. वाल्मीकि' ,ओमप्रकाश ,दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र', पृ .सं.13
2. लिंबाले' ,शरणकुमार ,दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र', (रमणिका गुप्ता-अनुवादक), पृ .सं.42
3. मीनू .सं.पृ ,दलित दखल ,रजत रानी ,176
4. वाल्मीकि' ,ओमप्रकाश ,दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र', पृ .सं.14-15
5. मोहन .सं.पृ ,प्रेमचंद और अछूत समस्या ,कान्ति ,5
6. कर्दमजयप्रका ,श .सं.पृ ,दलित साहित्य ,222
7. उद्धृत ,कोवप्रत :(डॉ .सं.पृ ,हिन्दी दलित साहित्य का विकास ,प्रमोद (.64

8. पाठक ,(डॉ .सं.पृ ,हिन्दी साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि ,विनय कुमार (.114
9. लिंबाले' ,शरणकुमार ,दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र', (रमणिका गुप्ता-अनुवादक), पृ131 .सं.
10. यथावत् .सं.पृ ,47
11. ठाकुर .सं.पृ ,दलित साहित्य का समाजशास्त्र ,हरिनारायण ,126
12. यथावत् .सं.पृ ,47
13. लिंबाले' ,शरणकुमार ,दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र', पृ .सं.63
14. यथावत् .सं.पृ ,63
15. ठाकुर .सं.पृ ,दलित साहित्य का समाजशास्त्र ,हरिनारायण ,65
16. यथावत्66 .सं.पृ ,
17. यथावत् .सं.पृ ,142
18. लिंबाले,शरणकुमार , 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र', (रमणिका गुप्ता-अनुवादक), पृ .सं.119
19. यथावत् .सं.पृ ,158
20. वसुधा-अंक ,कमला प्रसाद .सं ,582003 सितंबर-जुलाई ,, 'मीडिया और दलित ,लीलाधर मंडलोई ,सच की तस्वीर : .सं.पृ78
21. रणसुभे ,(डॉसू (.र्यनारायणवाणी प्रकाशन ,नयी दिल्ली ,दलित चेतना की पहचान ,
22. वाणी प्रकाशन ,नयी दिल्ली ,आधुनिकता के आइने में दलित ,अभय कुमार 'दुबे'